....

गुरुभक्ति



जो साधक सच्चे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु को पूर्ण परमात्म स्वरुप जानकर हृदय के पवित्र भाव से उनकी सेवा भक्ति करते हैं वे साधक आत्मज्ञान की प्राप्ति कर पाते हैं। सद्गुरु की जो सेवा करते हैं वे संपूर्ण विश्व की सेवा करते हैं। विनम्रता और प्रेम से, अहंकार और उकताए बिना की गई गुरुदेव की सेवा से साधक के हृदय मंदिर में आत्मज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है। यहाँ हमने ऐसे ही कुछ गुरु भक्त शिष्यों की पावन कथाएँ आपके लिए उपलब्ध कराई हैं। आइए इनका रसपान करें।

•भगवान श्रीराम

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अपने शिक्षागुरु विश्वामित्र के पास बहुत संयम, विनय और विवेक से रहते थे। गुरु की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे। उनकी सेवा के विषय में भक्त कवि तुलसीदास ने लिखा है- मुनिवर सयन कीन्हीं तब जाई। लागे चरन चापन दोऊ भाई।। जिनके चरन सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी।। बार बार मुनि आज्ञा दीन्हीं। रघुवर जाय सयन तब कीन्हीं।। गुरु ते पहले जगपति जागे राम सुजान। सीता-स्वयंवर में जब सब राजा धनुष उठाने का एक-एक करके प्रयत्न कर रहे थे तब श्रीराम संयम से बैठे ही रहे। जब गुरु विश्वामित्र की आज्ञा हुई तभी वे खड़े हुए और उन्हें प्रणाम करके धनुष उठाया।

सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा। हर्ष विषादु न कछु उर आवा।

गुरुहिं प्रनाम मन हि मन किन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लिन्हा।।

श्री सद्गुरुदेव के आदर और सत्कार में श्रीराम कितने विवेकी और सचेत थे, इसका उदाहरण जब उनको राज्योचित शिक्षण देने के लिए उनके गुरु वशिष्ठजी महाराज महल में आते हैं तब देखने को मिलता है। सद्गुरु के आगमन का समाचार मिलते ही सीताजी सहित श्रीराम दरवाजे पर आकर सम्मान करते हैं-

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार जाय पद नावउ माथा।।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भांति पूजि सनमाने।।

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी।।

इसके उपरांत भक्तिभावपूर्वक कहते हैं- 'नाथ! आप भले पधारे। आपके आगमन से घर पवित्र हुआ। परन्तु होना तो यह चाहिए था कि आप समाचार भेज देते तो यह दास स्वयं सेवा में उपस्थित हो जाता।' इस प्रकार ऐसी विनम्र भक्ति से श्रीराम अपने गुरुदेव को संतुष्ट रखते हैं।

गुरु भक्त आरुणि

महर्षि आयोद धौम्य के तीन प्रसिद्ध शिष्य हैं- आरुणि, उपमन्यु और वेद। इनमें से आरुणि अपने गुरुदेव के सबसे प्रिय शिष्य थे और सबसे पहले सब विद्या पाकर ये ही गुरु के आश्रम के समान दूसरा आश्रम बनाने में सफल हुए थे। आरुणि को गुरु की कृपा से सब वेद, शास्त्र, पुराण आदि बिना पढ़े ही आ गए थे। सच्ची बात यही है कि जो विद्या गुरुदेव की सेवा और कृपा से आती है, वही विद्या सफल होती है। उसी विद्या से जीवन का सुधार और दूसरों का भी भला होता है। जो विद्या गुरुदेव की सेवा के बिना पुस्तकों को पढ़कर आ जाती है, वह अहंकार को बढ़ा देती है। उस विद्या का ठीक-ठीक उपयोग नहीं हो पाता।

महर्षि आयोद धौम्य के आश्रम में बहुत से शिष्य थे। सब अपने गुरुदेव की बड़े प्रेम से सेवा किया करते थे। एक दिन शाम के समय वर्षा होने लगी। वर्षा की ऋतु बीत गई थी। आगे भी वर्षा होगी या नहीं, इसका कुछ पता नहीं था। वर्षा बहुत जोर से हो रही थी। महर्षि ने सोचा कि कहीं अपने धान के खेत की मेड़ अधिक पानी से भरने पर टूट जाएगी तो खेत में से सब पानी बह जाएगा। पीछे फिर वर्षा न हो तो धान बिना पानी के सूख ही जाएंगे। उन्होंने आरुणि से कहा- 'बेटा आरुणि! तुम खेत पर जाओ और देखो, कहीं मेड़ टूटने से खेत का पानी निकल न जाए।'

गुरुदेव की आज्ञा से आरुणि उस समय वर्षा में भीगते हुए खेत पर चले गए। वहां जाकर उन्होंने देखा कि धान के खेत की मेड़ एक स्थान से टूट गई है और वहां से बड़े जोर पानी बाहर जा रहा है। आरुणि ने वहां मिट्टी रखकर मेड़ बांध देना चाहा। पानी वेग से निकल रहा था और वर्षा से मिट्टी गिली हो गई थी, इसलिए आरुणि जितनी मिट्टी मेड़ बांधने को रखते थे, उसे पानी बहा ले जाता था। बहुत देर परिश्रम करके भी जब आरुणि मेड़ न बांध सके तो वे उस टूटी मेड़ के पास स्वयं लेट गए। उनके शरीर से पानी का बहाव रुक गया।

रातभर आरुणि पानी भरे खेत में मेड़ से सटे सोए रहे। सर्दी से उनका सारा शरीर अकड़ गया, लेकिन गुरुदेव के खेत का पानी बहने न पाए, इस विचार से वे न तो तनिक भी हिले और न उन्होंने करवट बदली। शरीर में भयंकर पीड़ा होते रहने पर भी वे चुपचाप पड़े रहे।

सबेरा होने पर संध्या-हवन करके सब विद्यार्थी गुरुदेव को प्रणाम करते थे। महर्षि आयोद धौम्य ने देखा कि आज सबेरे आरुणि प्रणाम करने नहीं आया। महर्षि ने दूसरे विद्यार्थियों से पूछा- 'आरुणि कहां है?'

विद्यार्थियों ने कहा- 'कल शाम को आपने आरुणि को खेत की मेड़ बांधने को भेजा था, तब से वह लौटकर नहीं आया।'

महर्षि उसी समय दूसरे विद्यार्थियों को साथ लेकर आरुणि को ढूंढने निकल पड़े। उन्होंने खेत पर जाकर आरुणि को पुकारा। आरुणि से ठंड के मारे बोला तक नहीं जाता था। उन्होंने किसी प्रकार अपने गुरुदेव की पुकार का उत्तर दिया। महर्षि ने वहां पहुंचकर उस आज्ञाकारी शिष्य को उठाकर हृदय से लगा लिया, आशीर्वाद दिया- 'पुत्र आरुणि! तुम्हें सब विद्याएं अपने-आप ही आ जाएं।' गुरुदेव के आशीर्वाद से आरुणि विद्वान हो गए।

गुरु भक्त उपमन्यु

महर्षि आयोद धौम्य अपनी विद्या, तपस्या और विचित्र उदारता के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। वे ऊपर से तो अपने शिष्यों से बहुत कठोरता करते प्रतीत होते हैं, किन्तु भीतर से शिष्यों पर उनका अपार स्नेह था। वे अपने शिष्यों को अत्यंत सुयोग्य बनाना चाहते थे। इसलिए जो ज्ञान के सच्चे जिज्ञासु थे, वे महर्षि के पास बड़ी श्रद्धा से रहते थे। महर्षि के शिष्यों में एक बालक का नाम था उपमन्यु। गुरुदेव ने उपमन्यु को अपनी गाएं चराने का काम दे रखा था। वे दिनभर वन में गाएं चराते और सायंकाल आश्रम में लौट आया करते। एक दिन गुरुदेव ने पूछा- 'बेटा उपमन्यु! तुम आजकल भोजन क्या करते हो?'

उपमन्यु ने नम्रता से कहा- 'भगवन्! मैं भिक्षा मांगकर अपना काम चला लेता हूं।' महर्षि बोले- 'वत्स! ब्रह्मचारी को इस प्रकार भिक्षा का अन्न नहीं खाना चाहिए। भिक्षा मांगकर जो कुछ मिले, उसे गुरु के सामने रख देना चाहिए। उसमें से गुरु यदि कुछ दें तो उसे ग्रहण करना चाहिए।'

उपमन्यु ने महर्षि की आज्ञा स्वीकार कर ली। अब वे भिक्षा मांगकर जो कुछ मिलता उसे गुरुदेव के सामने लाकर रख देते। गुरुदेव को तो शिष्य की श्रद्धा को दृढ़ करना था, अतः वे भिक्षा का सभी अन्न रख लेते। उसमें से कुछ भी उपमन्यु को नहीं देते। थोड़े दिनों बाद जब गुरुदेव ने पूछा- 'उपमन्यु! तुम आजकल क्या खाते हो?' तब उपमन्यु ने बताया कि 'मैं एक बार की भिक्षा का अन्न गुरुदेव को देकर दुबारा अपनी भिक्षा मांग लाता हूं।' महर्षि ने कहा- 'दुबारा भिक्षा मांगना तो धर्म के विरुद्ध है। इससे गृहस्थों पर अधिक भार पड़ेगा। और दूसरे भिक्षा मांगने वालों को भी संकोच होगा। अब तुम दूसरी बार भिक्षा मांगने मत जाया करो।'

उपमन्यु ने कहा- 'जो आज्ञा!' उसने दूसरी बार भिक्षा मांगना बंद कर दिया। जब कुछ दिनों बाद महर्षि ने फिर पूछा तब उपमन्यु ने बताया कि 'मैं गायों का दूध पी लेता हूं।' महर्षि बोले- 'यह तो ठीक नहीं।' गाएं जिसकी होती हैं, उनका दूध भी उसी का होता है। मुझसे पूछे बिना गायों का दूध तुम्हें नहीं पीना चाहिए।'

उपमन्यु ने दूध पीना भी छोड़ दिया। थोड़े दिन बीतने पर गुरुदेव ने पूछा- 'उपमन्यु! तुम दुबारा भिक्षा भी नहीं लाते और गायों का दूध भी नहीं पीते तो खाते क्या हो? तुम्हारा शरीर तो उपवास करने वाले जैसा दुर्बल नहीं दिखाई पड़ता।' उपमन्यु ने कहा- 'भगवन्! मैं बछड़ों के मुख से जो फेन गिरता है, उसे पीकर अपना काम चला लेता हूं।'

महर्षि बोले- 'बछड़े बहुत दयालु होते हैं। वे स्वयं भूखे रहकर तुम्हारे लिए अधिक फेन गिरा देते होंगे। तुम्हारी यह वृत्ति भी उचित नहीं है।' अब उपमन्यु उपवास करने लगे। दिनभर बिना कुछ खाए गायों को चराते हुए उन्हें वन में भटकना पड़ता था। अंत में जब भूख असह्य हो गई, तब उन्होंने आक के पत्ते खा लिए। उन विषैले पत्तों का विष शरीर में फैलने से वे अंधे हो गए। उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था।

गायों की पदचाप सुनकर ही वे उनके पीछे चल रहे थे। मार्ग में एक सूखा कुआं था, जिसमें उपमन्यु गिर पड़े। जब अंधेरा होने पर सब गाएं लौट आईं और उपमन्यु नहीं लौटे, तब महर्षि को चिंता हुई। वे सोचने लगे- मैंने उस भोले बालक का भोजन सब प्रकार से बंद कर दिया। कष्ट पाते-पाते दुखी होकर वह भाग तो नहीं गया।' उसे वे जंगल में ढूँढने निकले और बार-बार पुकारने लगे- 'बेटा उपमन्यु! तुम कहां हो?'

उपमन्यु ने कुएं में से उत्तर दिया- 'भगवन्! मैं कुएं में गिर पड़ा हूं।' महर्षि समीप आए और सब बातें सुनकर ऋग्वेद के मंत्रों से उन्होंने अश्विनीकुमारों की स्तुति करने की आज्ञा दी। स्वर के साथ श्रद्धापूर्वक जब उपमन्यु ने स्तुति की, तब देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार वहां कुएं में प्रकट हो गए। उन्होंने उपमन्यु के नेत्र अच्छे करके उसे एक पदार्थ देकर खाने को कहा। किन्तु उपमन्यु ने गुरुदेव को अर्पित किए बिना वह पदार्थ खाना स्वीकार नहीं किया। अश्विनी कुमारों ने कहा- 'तुम संकोच मत करो। तुम्हारे गुरु ने भी अपने गुरु को अर्पित किए बिना पहले हमारा दिया पदार्थ प्रसाद मानकर खा लिया था।'

उपमन्यु ने कहा- 'वे मेरे गुरु हैं, उन्होंने कुछ भी किया हो, पर मैं उनकी आज्ञा नहीं टालूंगा।' इस गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर अश्विनी कुमारों ने उन्हें समस्त विद्याएं बिना पढ़े आ जाने का आशीर्वाद दिया। जब उपमन्यु कुएं से बाहर निकले, महर्षि आयोद धौम्य ने अपने प्रिय शिष्य को हृदय से लगा लिया।

गुरु भक्त उत्तंक

महर्षि आयोद धौम्य के शिष्य महर्षि वेद ने अपने ब्रह्मचर्य आश्रम के जीवन में गुरु-गृह में अनेक कष्ट भोगे थे। उन कष्टों का स्मरण करके अपने यहां अध्ययन के लिए आने वाले किसी बालक को वे किसी कार्य में नियुक्त नहीं करते थे और न उनसे अपनी सेवा ही लेते थे। उनके शिष्यों में प्रधान थे उत्तंक। एक बार जब महर्षि वेद अपने आश्रम से किसी यात्रा पर जाने लगे, तब उन्होंने उत्तंक को अपनी अनुपस्थिति में अपना समस्त कार्य सम्हालने की आज्ञा दी। महर्षि वेद की पत्नी के मन में यह बात आई कि इस थोड़ी अवस्था के बालक पर उनके पतिदेव ने आश्रम का पूरा उत्तरदायित्व क्यों सौंपा। अतएव उन्होंने उत्तंक की परीक्षा लेने का विचार किया। ऋषिपत्नी ने कहा- 'उत्तंक! महर्षि ने जाते समय तुम्हें आज्ञा दी है कि उनकी अनुपस्थिति में उनके सभी कार्यों को सम्पन्न करो। मैं ऋतुमती हूं, अतः तुम्हें मेरे ऋतु को सफल करने का, महर्षि का कार्य भी पूरा करना चाहिए।'

उत्तंक ने थोड़ी देर विचार करके बड़ी नम्रता से प्रार्थना की- 'आप मेरे गुरुदेव की पत्नी हैं। आपकी आज्ञा से आपकी प्रसन्नता के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं, किन्तु माता! आप मुझे ऐसा अनुचित काम करने की आज्ञा न दें, यह पाप मैं नहीं कर सकूंगा।'

उत्तंक की दृढ़ श्रद्धा और संयम देखकर गुरुपत्नी प्रसन्न हो गईं। जब महर्षि वेद लौटे तब उनकी पत्नी ने स्वयं उनसे सब बातें बताईं क्योंकि उन्होंने तो उत्तंक की केवल परीक्षा लेना चाहा था। सब बातें सुनकर महर्षि ने उत्तंक को आशीर्वाद दिया- 'बेटा! तुम्हारी समस्त कामनाएं पूर्ण हों। तुम्हें समस्त ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जाए।'

अब उत्तंक ने गुरुदेव को गुरुदक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की। महर्षि ने गुरुपत्नी से पूछने को कहा। पूछने पर गुरुपत्नी ने बताया कि 'महर्षि के दूसरे शिष्य राजा पौष्य की पतिव्रता पत्नी के कानों में जो अमृतस्रावी कुण्डल हैं, उन्हें पर्व के अवसर पर मैं पहनना चाहती हूं।' पर्व का समय केवल चार दिन शेष था। उत्तंक राजा के पास वह कुण्डल मांगने चल पड़े। देवराज इंद्र ने देखा कि नागराज तक्षक बहुत दिनों से उन कुण्डलों को हरण करना चाहता है। राजा की पतिव्रता पत्नी के पास से कुण्डलों को लेने का तो उसमें साहस नहीं, पर यदि उत्तंक उन कुण्डलों को लेकर चले तो तक्षक किसी न किसी रूप में अवश्य कुण्डलों का हरण कर लेंगे। यद्यपि नागराज तक्षक इंद्र के मित्र हैं, किन्तु देवराज होने के कारण इंद्र को यह उचित जान पड़ा कि वे उत्तंक की सहायता करें। एक संयमी, तपस्वी, गुरुभक्त ब्राह्मण बालक यदि अपनी गुरुपत्नी को उनको मांगी दक्षिणा न दे सके तो उसे कितना खेद होगा, यह देवराज जानते थे और यह भी जानते थे कि उस समय उस तेजस्वी बालक के क्रोध को शांत करना सरल नहीं हो सकेगा। वह शाप देकर किसी भी लोकपाल को पदच्युत कर सकता है।

अतः इंद्र ने सहायता देने का उपाय पहले से निश्चित कर लिया। उत्तंक को राजा की पत्नी ने बड़ी श्रद्धा से अपने वे देवदुर्लभ कुण्डल दे दिए। छल करके तक्षक ने उस कुण्डलों को मार्ग में ही चुरा लिया, किन्तु इंद्र की सहायता से पाताल जाकर उत्तंक ने फिर कुण्डलों को प्राप्त किया और समय से पहले ही गुरुपत्नी को उन्हें अर्पित किया। जिसमें पूरा संयम और अटल गुरुभक्ति है, इसके निश्चय को भला त्रिलोकी में कोई भी व्यर्थ कैसे कर सकता है?

गुरु भक्त उत्तंक

महर्षि आयोद धौम्य के शिष्य महर्षि वेद ने अपने ब्रह्मचर्य आश्रम के जीवन में गुरु-गृह में अनेक कष्ट भोगे थे। उन कष्टों का स्मरण करके अपने यहां अध्ययन के लिए आने वाले किसी बालक को वे किसी कार्य में नियुक्त नहीं करते थे और न उनसे अपनी सेवा ही लेते थे। उनके शिष्यों में प्रधान थे उत्तंक। एक बार जब महर्षि वेद अपने आश्रम से किसी यात्रा पर जाने लगे, तब उन्होंने उत्तंक को अपनी अनुपस्थिति में अपना समस्त कार्य सम्हालने की आज्ञा दी। महर्षि वेद की पत्नी के मन में यह बात आई कि इस थोड़ी अवस्था के बालक पर उनके पतिदेव ने आश्रम का पूरा उत्तरदायित्व क्यों सौंपा। अतएव उन्होंने उत्तंक की परीक्षा लेने का विचार किया। ऋषिपत्नी ने कहा- 'उत्तंक! महर्षि ने जाते समय तुम्हें आज्ञा दी है कि उनकी अनुपस्थिति में उनके सभी कार्यों को सम्पन्न करो। मैं ऋतुमती हूं, अतः तुम्हें मेरे ऋतु को सफल करने का, महर्षि का कार्य भी पूरा करना चाहिए।'

उत्तंक ने थोड़ी देर विचार करके बड़ी नम्रता से प्रार्थना की- 'आप मेरे गुरुदेव की पत्नी हैं। आपकी आज्ञा से आपकी प्रसन्नता के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं, किन्तु माता! आप मुझे ऐसा अनुचित काम करने की आज्ञा न दें, यह पाप मैं नहीं कर सकूंगा।'

उत्तंक की दृढ़ श्रद्धा और संयम देखकर गुरुपत्नी प्रसन्न हो गईं। जब महर्षि वेद लौटे तब उनकी पत्नी ने स्वयं उनसे सब बातें बताईं क्योंकि उन्होंने तो उत्तंक की केवल परीक्षा लेना चाहा था। सब बातें सुनकर महर्षि ने उत्तंक को आशीर्वाद दिया- 'बेटा! तुम्हारी समस्त कामनाएं पूर्ण हों। तुम्हें समस्त ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जाए।'

अब उत्तंक ने गुरुदेव को गुरुदक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की। महर्षि ने गुरुपत्नी से पूछने को कहा। पूछने पर गुरुपत्नी ने बताया कि 'महर्षि के दूसरे शिष्य राजा पौष्य की पतिव्रता पत्नी के कानों में जो अमृतस्रावी कुण्डल हैं, उन्हें पर्व के अवसर पर मैं पहनना चाहती हूं।' पर्व का समय केवल चार दिन शेष था। उत्तंक राजा के पास वह कुण्डल मांगने चल पड़े। देवराज इंद्र ने देखा कि नागराज तक्षक बहुत दिनों से उन कुण्डलों को हरण करना चाहता है। राजा की पतिव्रता पत्नी के पास से कुण्डलों को लेने का तो उसमें साहस नहीं, पर यदि उत्तंक उन कुण्डलों को लेकर चले तो तक्षक किसी न किसी रूप में अवश्य कुण्डलों का हरण कर लेंगे। यद्यपि नागराज तक्षक इंद्र के मित्र हैं, किन्तु देवराज होने के कारण इंद्र को यह उचित जान पड़ा कि वे उत्तंक की सहायता करें। एक संयमी, तपस्वी, गुरुभक्त ब्राह्मण बालक यदि अपनी गुरुपत्नी को उनको मांगी दक्षिणा न दे सके तो उसे कितना खेद होगा, यह देवराज जानते थे और यह भी जानते थे कि उस समय उस तेजस्वी बालक के क्रोध को शांत करना सरल नहीं हो सकेगा। वह शाप देकर किसी भी लोकपाल को पदच्युत कर सकता है।

अतः इंद्र ने सहायता देने का उपाय पहले से निश्चित कर लिया। उत्तंक को राजा की पत्नी ने बड़ी श्रद्धा से अपने वे देवदुर्लभ कुण्डल दे दिए। छल करके तक्षक ने उस कुण्डलों को मार्ग में ही चुरा लिया, किन्तु इंद्र की सहायता से पाताल जाकर उत्तंक ने फिर कुण्डलों को प्राप्त किया और समय से पहले ही गुरुपत्नी को उन्हें अर्पित किया। जिसमें पूरा संयम और अटल गुरुभक्ति है, इसके निश्चय को भला त्रिलोकी में कोई भी व्यर्थ कैसे कर सकता है?

संत कबीर

संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को कबीरजी काशी में लहरतारा तालाब के किनारे नीरू जुलाहे को मिले थे। इस विषय में ठीक पता नहीं है कि उस शिशु को वहाँ कौन छोड़ गया था। नीरू जुलाहे की स्त्री का नाम नीमा था। उसके कोई संतान नही थी। नीरू ने यही समझा कि भगवान ने ही उसे यह पुत्र दिया है। उसने बालक को लाकर अपनी स्त्री को दे दिया। दोनों ने बड़े प्रेम से कबीर का पालन पोषण किया।

एक दिन एक पहर रात रहते कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर सो गए। वे जानते थे कि स्वामी रामानंदजी जान-बूझकर एक जुलाहे के लड़के को शिष्य नहीं बनाएंगे। प्रतिदिन की भाँति अंधेरे में ही स्वामी रामानन्दजी गंगा स्नान करने आए। उनका पैर सीढ़ी पर सोते कबीर की छाती पर पड़ा तो राम-राम बोल उठे। कबीर ने इसी को गुरु मन्त्र मान लिया।

कबीरजी की पत्नी का नाम लोइ था। उनका कमल नामक पुत्र तथा कमाली नामकी एक कन्या थी। अपने परिवार का पालन कबीर करघे पर कपड़ा बुनकर और उसे बाजार में बेचकर करते थे। साधु-संतों की सेवा उनके घर के सभी लोग करते थे।

धीरे-धीरे लोगों में कबीरजी की साधुता की प्रशंसा होने लगी। लोग उनके उपदेशों का सम्मान करने लगे। उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आदर की दृष्टि से देखने लगे। काशी में बहुत आदर-मान बढ़ जाने के कारण कबीर वहाँ से मगहर चले आए। कबीर कहते थे- मान बड़ाई तो विष के समान है। भगवान के मार्ग में चलने वाले को सम्मान से दूर ही रहना चाहिए।

119 वर्ष की अवस्था में उन्होनें मगहर में ही शरीर छोड़ा। भगवान की कृपा पर उनका इतना पक्का विश्वास था कि वे कहते थे- 'जौं कबिरा कासी मरै तो रामहिं कौन निहोरा।' अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि सद्गुणों का कबीर उपदेश करते थे। उनकी वाणी का संग्रह बीजक कहा जाता है। यही कबीर पन्थ का धर्मग्रन्थ है।

कबीर के उपदेशों का सार यह है- हिन्दू, मुसलमान सभी भगवान की संतान हैं। भगवान किसी एकके ही नहीं हैं। सब अपनी-अपनी रुचि से उनका भजन कर सकते हैं। धर्म के नाम पर ढोंग करना बड़ा भारी पाप है। भगवान तो सत्य, सदाचार और प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं।

कबीर साधु सेवा के पक्के समर्थक हैं। वे स्वयं संतसेवी थे। सत्संग की महिमा उनकी वाणियों में बहुत अधिक है।

संत एकनाथ

संत एकनाथ देवगढ़ राज्य के दीवान श्री जनार्दन स्वामी के शिष्य थे। 10 वर्ष की छोटी उम्र में ही उन्होंने श्रीगुरुचरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया था। वे गुरुदेव के कपड़े धोते, पूजा के लिए फूल लाते, जब गुरुदेव भोजन करते तब पंखा झलते, गुरु के पुत्रों की देखभाल करते, उनके नाम आए हुए पत्र पढ़ते और गुरु के संकेत अनुसार उनका जवाब देते। ऐसे एवं अन्य भी कई प्रकार के छोटे-मोटे काम वे गुरुचरणों में करते।

एक बार गुरुदेव ने एकनाथ को राजदरबार का हिसाब करने को कहा। एकनाथ बहियां लेकर हिसाब करने बैठे। दूसरे ही दिन प्रातः हिसाब-किताब राजदरबार में बताना था। सारा दिन हिसाब-किताब लिखने व देखने में बीत गया। रात हुई। नौकर दीपक जलाकर चला गया। एकनाथ को पता नहीं चला कि रात शुरू हो गई है। हिसाब में एक पाई की भूल आ रही थी। आधी रात बीत गई फिर भी भूल पकड़ में नहीं आई। एकनाथ अपने काम में लगे रहे। प्रातः जल्दी उठकर गुरुदेव ने देखा कि एकनाथ तो अभी भी हिसाब देख रहे हैं। वे आकर दीपक के आगे चुपचाप खड़े हो गए। बहियों पर थोड़ा अंधेरा छा गया फिर भी एकनाथ एकाग्रचित से बहियां देखते रहे। वे अपने काम में इतने मशगूल थे कि अंधेरे में भी उन्हें अक्षर साफ दिख रहे थे।

इतने में पाई की भूल पकड़ में आ गई। एकनाथ हर्ष से चिल्ला उठे- 'मिल गई... मिल गई...!' गुरुदेव ने पूछा- 'क्या मिल गया बेटा?' एकनाथ चौंक पड़े। ऊपर देखा तो गुरुदेव सामने खड़े हैं। उठकर प्रणाम किया और बोले- 'गुरुदेव! एक पाई की भूल पकड़ में नहीं आ रही थी। अब वह मिल गई।'

हजारों के हिसाब में एक पाई की भूल! और उसको पकड़ने के लिए रातभर जागरण! गुरु की सेवा में इतनी लगन, इतनी तितिक्षा और भक्ति देखकर दीवान जनार्दन स्वामी के हृदय से गुरुकृपा बह निकली। उन्हें ज्ञानामृत की वर्षा करने के लिए योग्य अधिकारी का उरआंगन (हृदय) मिल गया। सद्गुरु की आध्यात्मिक वसीयत संभालने वाला सत्शिष्य मिल गया। उसके बाद ही एकनाथ के जीवन में ज्ञान का सूर्य उदय हुआ और उनके सान्निध्य में अनेक दूसरे साधकों ने अपनी आत्मज्योति जगाकर धन्यता का अनुभव किया। साक्षात गोदावरी माता भी लोगों द्वारा डाले गए पाप धोने के लिए इन ब्रह्मनिष्ठ संत के सत्संग में आती थी। संत एकनाथजी की 'एकनाथी भागवत' को सुनकर आज भी कई लोग तृप्त होते हैं।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य अल्प अवस्था में ही भाष्यसमेत शास्त्रों में पारंगत हो गए थे। फलस्वरूप उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया था। उनके हृदय में प्राणीमात्र के कल्याण की भावनाएं तब से ही थीं जब उन्होंने होश संभाला। मां की आज्ञा लेकर बाल्यावस्था में ही उन्होंने संन्यास ले लिया और आत्मज्ञान लाभ के लिए सद्गुरु की खोज में पैदल निकल पड़े। केरल प्रदेश में चलते-चलते दो मास के बाद नर्मदा के किनारे ओंकारनाथ पहुंचे। वहां पता चला कि एक गुफा में कोई महायोगी सैकड़ों वर्षों से समाधिस्थ हुए बैठे हैं। इस परिपक्व जिज्ञासु का हृदय आनंद से पुलकित हो उठा।

गुरु के लिए इस बालक की तीव्र जिज्ञासा जानकर वहां के वृद्ध संन्यासियों ने कहा- 'हे बालक! तुम धन्य हो। धन्य है तुम्हारी तितिक्षा और गुरुभक्ति! यहां पर महायोगी श्रीमान् गोविंदपादाचार्य समाधिस्थ बैठे हैं। कब से बैठे हैं यह कोई नहीं जानता। उनसे उपदेश पाने की प्रतीक्षा में बैठे हम भी अब वृद्ध हो चले।'

बालक शंकर ने वृद्ध संन्यासी के संकेत के अनुसार दीपक लेकर उस अंधकारमय गुफा में प्रवेश किया। वहां एक अति दीर्घकाय, लंबी जटा वाले योगी पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे थे। उनकी त्वचा सूख चुकी थी। देह कंकालमात्र अवशिष्ट रही थी फिर भी ज्योतिर्मय थी।

जिनके पावन चरणकमलों में आश्रय पाने के लिए इस कोमल वय में ही इतनी लंबी पैदल यात्रा की उन गुरुदेव के दर्शन पाकर बालक शंकर का मन अनिर्वचनीय दिव्यानंद से भर उठा। वे भी ध्यान में लीन हो गए। अबाध अश्रुजल से उनका वक्षस्थल भीग उठा। वे भावावेश में आकर गुरुदेव की स्तुति करने लगे-

'हे प्रभो! आपकी महिमा अपार है। ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की कामना से मैं आपके श्रीचरणों में आश्रय की भिक्षा मांगता हूं। समाधि-भूमि से व्युत्थित होकर इस दीन शिष्य को स्वीकार करें।'

इस प्रकार बालक शंकर की स्तुति से गुफा मुखरित हो उठी। महायोगी के निश्चल निस्पंद देह में प्राणों का स्पन्दन होने लगा। क्षणभर में उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर आंखें खोलीं। क्रम से उनका मन यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा जीवनभूमि पर उतर आया। सहस्रों वर्षों की समाधि एक सच्चे अधिकारी जिज्ञासु बालक के आने से छूटी। यह वार्ता द्रुतगति से चारों ओर फैल गई। दर्शनाभिलाषी नर-नारियों की भीड़ ने ओंकारनाथ को एक तीर्थ क्षेत्र में परिणत कर दिया।

सद्गुरुदेव श्री गोविंदपादाचार्य ने बाल संन्यासी शंकर को शिष्य रूप में ग्रहण किया। क्रमशः हठयोग, राजयोग और ज्ञानयोग सिखाया। साधनक्रमानुसार अपरोक्षानुभूति के उच्च स्तर में उसे दृढ़ प्रतिष्ठित कर दिया। अद्वैत वेदान्त के आखिरी रहस्यों का उद्घाटन कर दिया। उनकी देह में ब्रह्मज्योति प्रस्फुट हो उठी। यही बाल संन्यासी शंकर जगद्गुरु श्रीमद आद्य शंकराचार्य हो गए। भारतीय संस्कृति के अनुपम रत्न इन महान आचार्य के योगदान को आज कौन नहीं जानता? धन्य है आचार्य शंकर की गुरुभक्ति को!

स्वामी विवेकानंद

विवेकानंदजी का जन्म 12 जनवरी सन् 1863 को हुआ। उनका घर का नाम नरेंद्र दत्त था। उनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त पाश्चात्य सभ्यता में विश्वास रखते थे। वे अपने पुत्र नरेंद्र को भी अंगरेजी पढ़ाकर पाश्चात्य सभ्यता के ढंग पर ही चलाना चाहते थे। नरेंद्र की बुद्धि बचपन से बड़ी तीव्र थी और परमात्मा को पाने की लालसा भी प्रबल थी। इस हेतु वे पहले ब्रह्म समाज में गए किंतु वहाँ उनके चित्त को संतोष नहीं हुआ।

सन् 1884 में श्री विश्वनाथ दत्त की मृत्यु हो गई। घर का भार नरेंद्र पर पड़ा। घर की दशा बहुत खराब थी। कुशल यही थी कि नरेंद्र का विवाह नहीं हुआ था। अत्यंत गरीबी में भी नरेंद्र बड़े अतिथि-सेवी थे। स्वयं भूखे रहकर अतिथि को भोजन कराते, स्वयं बाहर वर्षा में रातभर भीगते-ठिठुरते पड़े रहते और अतिथि को अपने बिस्तर पर सुला देते।

रामकृष्ण परमहंस की प्रशंसा सुनकर नरेंद्र उनके पास पहले तो तर्क करने के विचार से ही गए थे किंतु परमहंसजी ने देखते ही पहचान लिया कि ये तो वही शिष्य है जिसका उन्हें कई दिनों से इंतजार है। परमहंसजी की कृपा से इनको आत्म-साक्षात्कार हुआ फलस्वरुप नरेंद्र परमहंसजी के शिष्यों में प्रमुख हो गए। संन्यास लेने के बाद इनका नाम विवेकानंद हुआ।

स्वामी विवेकानन्द अपना जीवन अपने गुरुदेव स्वामी रामकृष्ण परमहंस को समर्पित कर चुके थे। गुरुदेव के शरीर-त्याग के दिनों में अपने घर और कुटुम्ब की नाजुक हालत की परवाह किए बिना, स्वयं के भोजन की परवाह किए बिना गुरु सेवा में सतत हाजिर रहे। गुरुदेव का शरीर अत्यंत रुग्ण हो गया था। कैंसर के कारण गले में से थूंक, रक्त, कफ आदि निकलता था। इन सबकी सफाई वे खूब ध्यान से करते थे।

एक बार किसी ने गुरुदेव की सेवा में घृणा और लापरवाही दिखाई तथा घृणा से नाक भौंहें सिकोड़ीं। यह देखकर विवेकानन्द को गुस्सा आ गया। उस गुरुभाई को पाठ पढ़ाते हुए और गुरुदेव की प्रत्येक वस्तु के प्रति प्रेम दर्शाते हुए उनके बिस्तर के पास रक्त, कफ आदि से भरी थूकदानी उठाकर पूरी पी गए।

गुरु के प्रति ऐसी अनन्य भक्ति और निष्ठा के प्रताप से ही वे अपने गुरु के शरीर और उनके दिव्यतम आदर्शों की उत्तम सेवा कर सके। गुरुदेव को वे समझ सके, स्वयं के अस्तित्व को गुरुदेव के स्वरूप में विलीन कर सके। समग्र विश्व में भारत के अमूल्य आध्यात्मिक खजाने की महक फैला सके। उनके इस महान व्यक्तित्व की नींव में थी ऐसी गुरुभक्ति, गुरुसेवा और गुरु के प्रति अनन्य निष्ठा।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

25 वर्ष की अवस्था में नरेंद्र दत्त ने गेरुआ वस्त्र पहन लिए। तत्पश्चात उन्होंने पैदल ही पूरे भारतवर्ष की यात्रा की।

सन् 1893 में शिकागो (अमेरिका) में विश्व धर्म परिषद् हो रही थी। स्वामी विवेकानंदजी उसमें भारत के प्रतिनिधि के रूप से पहुँचे। योरप-अमेरिका के लोग उस समय पराधीन भारतवासियों को बहुत हीन दृष्टि से देखते थे। वहाँ लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामी विवेकानंद को सर्वधर्म परिषद् में बोलने का समय ही न मिले। एक अमेरिकन प्रोफेसर के प्रयास से उन्हें थोड़ा समय मिला किंतु उनके विचार सुनकर सभी विद्वान चकित हो गए।

फिर तो अमेरिका में उनका बहुत स्वागत हुआ। वहाँ इनके भक्तों का एक बड़ा समुदाय हो गया। तीन वर्ष तक वे अमेरिका रहे और वहाँ के लोगों को भारतीय तत्वज्ञान की अद्भुत ज्योति प्रदान करते रहे।

'अध्यात्म-विद्या और भारतीय दर्शन के बिना विश्व अनाथ हो जाएगा' यह स्वामी विवेकानंदजी का दृढ़ विश्वास था। अमेरिका में उन्होंने रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखाएँ स्थापित कीं। अनेक अमेरिकन विद्वानों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

4 जुलाई सन् 1902 को उन्होंने देह त्याग किया। वे सदा अपने को गरीबों का सेवक कहते थे। भारत के गौरव को देश-देशांतरों में उज्ज्वल करने का उन्होंने सदा प्रयत्न किया।

स्वामी दयानन्द

स्वामी विरजानन्दजी की पूण्यकीर्ति सुनकर उनके दर्शन करने की और उनसे आर्ष ग्रंथों का अभ्यास, वैदिक अमृत का पान करने की तीव्र जिज्ञासा स्वामी दयानन्द के अंदर जाग उठी। वे मथुरा में स्थित दण्डी स्वामी विरजानन्दजी की कुटिया पर पहुंचे। दण्डीजी का सामान्य नियम था कि पढ़ाने के अतिरिक्त समय में वे अपना द्वार बंद रखते थे। केवल दर्शनार्थियों से मिलना उन्हें पसंद न था।

दयानन्द ने धीरे से दरवाजा खटखटाया। अंदर से प्रश्न हुआ- 'कौन है?' 'मैं कौन हूं यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूं।' -दयानन्द ने विनयपूर्वक कहा। 'क्या कुछ पढ़े भी हो?' दयानन्द ने जो कुछ पढ़ा था वह सब कह सुनाया फिर भी दरवाजा न खुला।

भीतर से आवाज आई। 'आज तक जो कुछ तुमने पढ़ा है वह सब भुला दो। जब तक मनुष्य प्रणीत ग्रंथों का प्रभाव तुम्हारे हृदय पटल पर रहेगा तब तक तुम्हारे चित्त में आर्ष ग्रंथों का प्रभाव प्रवेश न कर सकेगा। यदि तुम्हारे पास ऐसे ग्रंथ हों तो उन्हें भी यमुना में डाल आओ।'

पढ़ी हुई विद्या को फेंकना कितना दुष्कर है। किन्तु दयानन्द विलक्षण पुरुष थे। अपनी सभी पुस्तकें उन्होंने यमुना में डाल दीं और पुराने पढ़े को विस्मृत कर हृदय पटल को स्वच्छ कर दिया।

गुरुदेव की कुटिया का दरवाजा खुल गया। उन्हीं के कृपा प्रसाद से स्वामी दयानन्द ने हिंदूजाति को आडम्बर और भ्रमजाल से निकाला तथा वेदों के ज्ञान को नए सिरे से प्रकाशित किया।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

धन्य है गुरुचरणों में अपनी मान्यताएं अर्पण कर देने वाले ऐसे शिष्यों को!

बाबा फरीद

पाकिस्तान में बाबा फरीद नाम के एक फकीर थे। उनकी गुरुभक्ति अनन्य थी। गुरुजी की सेवा में ही उनका सारा समय व्यतीत होता था।

एक बार उनके गुरु ख्वाजा बहाउद्दीन ने उनको किसी खास काम के लिए मुलतान भेजा। वहां उन दिनों में शाह शम्सतबरेज के शिष्यों ने अपने गुरु के नाम का एक दरवाजा बनाया था और घोषणा की थी कि आज इस दरवाजे से जो गुजरेगा वह जरूर स्वर्ग में जाएगा। हजारों फकीर और गृहस्थ आज इस दरवाजे से गुजर रहे थे। नश्वर शरीर का त्याग होने के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा ऐसी सबको आशा थी। फरीद को भी उनके मित्र फकीरों ने दरवाजे से गुजरने के लिए खूब समझाया, परन्तु फरीद तो उनको जैसे-तैसे समझा-पटाकर अपना काम पूरा करके, बिना दरवाजे से गुजरे ही अपने गुरुदेव के चरणों में पहुंच गए।

सर्वान्तर्यामी गुरुदेव ने उनसे मुलतान के समाचार पूछे और कोई विशेष घटना हो तो बताने के लिए कहा। फरीद ने शम्सजी के दरवाजे का वर्णन करके सारी हकीकत सुना दी।

गुरुदेव बोले- 'मैं भी वहां होता तो उस पवित्र दरवाजे से गुजरता। तुम कितने भाग्यशाली हो फरीद कि तुमको उस पवित्र दरवाजे से गुजरने का सुअवसर प्राप्त हुआ!'

सद्‌गुरु की लीला बड़ी अजीबोगरीब होती है। शिष्य को पता नहीं चलता और वे उसकी कसौटी कर लेते हैं। फरीद तो सत्‌शिष्य थे। उनको अपने सद्‌गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति थी। गुरुदेव के शब्द सुनकर वे बोले- 'कृपानाथ! मैं तो उस दरवाजे से नहीं गुजरा। मैं तो केवल आपके दरवाजे से ही गुजरूंगा। एक बार मैंने आपकी शरण ली है तो अब और किसी की शरण मुझे नहीं जाना है।'

यह सुनकर ख्वाजा बहाउद्दीन की आंखों में प्रेम उमड़ आया। शिष्य की दृढ़ श्रद्धा और अनन्य शरणागति देखकर उसे उन्होंने छाती से लगा लिया। उनके हृदय की गहराई से आशीर्वादात्मक शब्द निकल पड़े- 'फरीद! शम्सतबरेज का दरवाजा तो केवल एक ही दिन खुला था, परन्तु तुम्हारा दरवाजा तो ऐसा खुलेगा कि उसमें से जो हर गुरुवार को गुजरेगा वह सीधा स्वर्ग में जाएगा।'

आज भी पश्चिमी पाकिस्तान के पाक पट्‌टन कस्बे में बने हुए बाबा फरीद के दरवाजे में से हर गुरुवार को गुजरकर हजारों यात्री अपने को धन्यभागी मानते हैं। यह है गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठा की महिमा।

धन्य हैं ऐसे बाबा फरीद जैसे सत्‌शिष्यों को कि जिन्होंने सद्‌गुरु के हाथों में अपनी जीवन की बागडोर हमेशा के लिए सौंप दी और निश्चिंत हो गए।

महात्मा सुकरात

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

यूनान (ग्रीस) देश में ईसा मसीह से पूर्व पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुप्रसिद्ध तत्वज्ञानी सुकरात का जन्म हुआ था। उस समय यूनान में सूफी मत के लोगों की प्रधानता थी। मत कोई भी हो, जब उसमें कोरा तर्कजाल बढ़ जाता है, संयम-सदाचार आदि जब नहीं रहते और केवल बुद्धि के बल पर नाना प्रकार के शब्द-जाल फैलाए जाते हैं, तब वह मत सत्य से दूर हो जाता है। उसमें दम्भ ही बचा रहता है। उस समय सूफी मत की लगभग यही दशा यूनान में थी। परमार्थ-सत्ता के संबंध में लोगों का भ्रम दूर हो, लोग उस सर्वात्मा के संबंध के व्यापक रूप से परिचित हों- इस विचार से सुकरात ने उपदेश देना प्रारंभ किया।

सुकरात के उपदेशों में दो बातें मुख्य थीं- एक तो 'मनुष्य अल्पज्ञ है' यह वे कहा करते थे। उनका कहना था- 'मैं जो कुछ जानता हूँ, वह यही है कि मैं कुछ नहीं जानता।' दूसरे वे आत्मा की व्यापकता का अपने उपदेशों में प्रचार करते थे। सादा जीवन और छलहीन व्यवहार- यही सुकरात की मुख्य शिक्षा है।

'एकमात्र आत्मा की उपासना करनी चाहिए।' सुकरात के इस उपदेश से यूनान में प्रचलित उस समय की प्रथा पर बड़ा धक्का लगता था। इसलिए सुकरात पर यह दोष लगाया गया कि वे यूनान के लोगों में कुविचार और निरिश्वरवाद का प्रचार करते हैं। उन्हें मृत्युदंड दिया गया। उनके पास विष का प्याला भेजकर आज्ञा दी गई कि उसे पी लें।

सुकरात के शिष्य और उनसे स्नेह करने वाले दूसरे लोग व्याकुल हो गए। किंतु सुकरात आत्मज्ञानी थे। उन्हें शरीर का मोह नहीं था। शरीर नाशवान है और आत्मा अमर है, इस बात को वे भली प्रकार जानते थे। विष के प्याले को लेकर हँसते-हँसते उन्होंने विष पी लिया। स्वयं डरने के बदले वहाँ जो लोग थे, उन्हें सुकरात ने समझाया।

विष ने उनके शरीर को अवश्य कष्ट दिया किंतु सुकरात तो अमर ही हैं। उनके उपदेशों को अब भी बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। यूनान के लोग अब इस बात पर गर्व करते हैं कि सुकरात का जन्म उनके देश में हुआ था।

ॐ

मोक्ष का द्वार : गुरु

-प.पू. संत श्री आसारामजी बापू

(उत्तरायण की ध्यान योग शिविर में साधकों के समक्ष पूज्य श्री के श्रीमुख से प्रवाहित गुरुभक्ति की भावगंगाः)

गुरुप्रसाद से जिनका अंतर शुद्ध हो चुका है, बाह्य शुद्धी उनके समक्ष दासी बन जाती है। अंतर में यदि गुरु की सेवा हो और गुरु प्रसाद का मूल्य समझ में आ चुका हो तो उस साधक अथवा शिष्य को अन्य किसी शुद्धि की चिंता नहीं करनी चाहिए। वह जो भी करेगा, वह शुद्ध हो जाएगा, जो कुछ खाएगा वह पवित्र हो जाएगा। जो गुरुभक्त है, गुरु की पवित्र सेवा में जिसका तन और मन यज्ञरूप बन गया है उसे कोई दोष नहीं लगता। उसके लिए सभी क्षम्य हैं।

जिसके हृदय का अधिकार गुरुभक्ति ने ले लिया है उसे तीर्थाटन से क्या काम? उसे मंदिरों में जाने की क्या आवश्यकता? उसका मन ही मंदिर बन जाता है, उसका तन शिवालय बन जाता है। जिसके मन पर गुरुत्व ने अधिकार जमा लिया है वह स्वयं ही चलता-फिरता एक तीर्थधाम बन जाता है। ज्ञानेश्वर जैसे, एकनाथ, एकलव्य, तोटकाचार्य जैसे सद्पात्र शिष्य सत् शिष्यों को याद करने से, उनके नाम का स्मरण करने से, उनकी कथाओं का पुनरावर्तन करने से आज भी हजारों लोग पवित्र हो जाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज की गुरुभक्ति सुनकर अच्छे से अच्छे संत, प्रगल्भ वक्तागण तथा उत्तम प्रकार के गुरुभक्त भी द्रवित हो जाते हैं। वे ज्ञानेश्वर महाराज धन्य हैं। उनका अंतःकरण धन्य है जो गुरुत्व को झेल सका, गुरुत्व को समझ सका अन्यथा बाह्य शुद्धि, बाहरी समझ तो ऐसी होती है मानो विष पर चाशनी का लेप, जैसे पेट क्षुधा पीड़ित हो और बाहर पेट का अन्न लेप कर दिया जाए। भीतर यदि काम, क्रोध, लोभ, राग और द्वेष की अग्नि हो तो बाह्य शुद्धि, पवित्रता व्यर्थ हो जाती है। गुरुभक्ति से भीतरी विकार नष्ट हो जाते हैं। गुरुसेवा से तन पवित्र हो जाता है। गुरु के कृपा कटाक्ष से मन पवित्र हो जाता है।

भागवत पुराण में भगवान वेद व्यास ने कहा है :

यदि काम पर जय प्राप्त करनी हो तो देह की नश्वरता पर विचार करो। मृत देह को देखो, शव पर विचार करो व रोगी शरीरों की हालत देखो। लोभ को जीतना हो तो कमाए हुए धन का दान करो और मोह को पराजित करना हो तो विवेक से काम लो। अहंकार को विजित करना हो तो अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति को देखो। धन के अहं को जीतने के लिए अपने से अधिक धनी को देखो। विद्या के अहं को जीतना हो तो अपने से बड़े विद्वान को देखो। अपनी बुद्धि और चालाकी का अधिक गुमान हो तो अपने से अधिक चालाक लोगों में रहो। परंतु इन सब प्रयासों से दूर, जिसे सद्‌गुरु की प्राप्ति हो गई, जिसे गुरुभक्ति रूपी संजीवनी मिल गई उसे काम दूर करने के लिए अलग से कोई उपाय नहीं करना पड़ता, क्रोध दूर करने के लिए भी कोई अतिरिक्त उपाय करना आवश्यक नहीं।

अविद्वत्ता दूर करनी हो तो विद्यालयों में जाइए, अनपढ़ हों तो अध्यापकों की दासता स्वीकारिए। परंतु जिसने गुरुदेव की दासता प्राप्त कर ली वह अनपढ़ होते हुए भी विद्वानों को पढ़ाता है, नासमझ होते हुए भी समझदारों को समझाने की क्षमता रखता है। क्योंकि :

नास्ति तत्वं गुरोः परम् ।

शिष्य का यह कर्तव्य होता है कि गुरुसेवा में अपना सर्वस्व लुटा दे। गुरु का स्वभाव ही होता है कि वह संप्राप्त आध्यात्मिक पूँजी का अपना संपूर्ण कोष शिष्य के हृदय में उड़ेल दे। इसके बावजूद भी उसकी पूँजी में कोई अभाव नहीं आ पाता।

जिस शिष्य में गुरु के प्रति अनन्य भाव नहीं जागता वह शिष्य आवारा पशु के समान ही रह जाता है। उसकी हालत धोबी के कुत्ते जैसी है, न घर का न घाट का। उसके मन को पूर्ण विकसित हो पाने का अवसर नहीं मिलता। अधिक भटकने से उसका मन नास्तिक भाव में जाता है और वह खिन्नता अनुभव करने लगता है। पर जिसे सद्‌गुरु मिल गए हैं और जो सद्‌शिष्य बन सका है उसके लिए परमात्मा के प्रेमप्रभाव का झरना फूट निकलता है। गुरुकृपा, गुरुप्रसादी जब हृदय में प्रविष्ट होती है तब- अ...हा...हा...!! गुरुप्रसादी क्या वस्तु होती है यह यदि जानना हो तो किसी गुरुभक्त के हृदय में झांककर देखिए, गुरुप्रसाद का स्वाद क्या होता है यह यदि जानना हो तो किसी सत्‌शिष्य के हृदय में झांककर देखिए, तब आपको पता चलेगा। देवतागण तो उस अमृत से वंचित रहते हैं जो अमृत गुरुभक्त को मिलता है। जिसे गुरुभक्त गुरुभक्ति से संप्राप्त कर पीता है। उस अमृत से योगीजन भी वंचित रहते हैं। कर्मी ि इस अमृत से बहुत दूर रह जाते हैं। कर्मी

कर्मकांड की शुद्धि में तो लगे रहते हैं परंतु हृदय की शुद्धि परम भाव से प्राप्त होती है, भाव के बिना वह संभव नहीं है। उससे वे वंचित रह जाते हैं।

तीर्थों में स्नान करने से एक फल मिलता है परंतु यदि कोई गुरुभक्त मिल जाए और उसके सान्निध्य में रहें तो चार फल मिलते हैं। गुरुभक्त के सान्निध्य मात्र से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों के दरवाजे खुल जाते हैं। किसी गुरुभक्त से मित्रता करके देखिए। वह आपको धर्म के मार्ग पर ले जाएगा। उसका स्वभाव ही होता है कि वह आपको धार्मिक बनाकर ही छोड़ेगा। आपको ठूंठ नास्तिक न रहने देगा। सच्चा गुरुभक्त आपको मिले तो धर्म का द्वार ही खोल दे।

सच्चा गुरुभक्त ही संतत्व को प्राप्त होता है। संतो जैसा वेश बनाकर बैठ जानेवाले संतत्व को प्राप्त नहीं होते।

तीरथ नहाए एक फल, संत मिले फल चार ।

सत्गुरु मिले अनंत फल, कहे कबीर विचार ।।

ऐसे कोई संत मिल जाएँ ... ! ऐसे गुरुभक्त मिल जाएँ ... ! तो? हमें समझ में आएगा कि हम अब तक तो धुँआ ही चाट रहे थे, पानी बिलो रहे थे मक्खन निकलेगा, हीरों की धुन में पत्थर चुनकर लादे व्यर्थ का भार उठाए फिर रहे थे। ऐसे किसी विरले से भेंट होते ही कर्मकांडियों के तो होश ही उड़ जाएँगे।

परमहंस रामकृष्णदेव की परीक्षा लेने एक पंडित आए। रामकृष्ण की मस्ती देखकर वे तो चकित हो उठे, उनका ईश्वरीय आनंद देखकर वापस लौटते हुए उन्होंने रामकृष्णजी के शिष्यों से गदगदकंठ होकर कहा :

‘गाड़ियाँ भरी जा सके इतने ग्रंथों का अध्ययन मैंने किया है पर आज जाना कि मैं तो व्यर्थ बोझ उठाए हूँ। अमृत तो आपके रामकृष्णजी पी रहे हैं और उनकी कृपाप्रसादी का स्वाद आप लोग पा रहे हैं। हम तो मस्तिष्क में बोझा भरे हुए पंडित हो गए हैं।’

पुस्तकें पढ़-पढ़कर गुरु बन जाने में कोई सार नहीं। ऐसे निगुरे गुरुओं की कोई आवश्यकता नहीं। आजकल समाज में ऐसे पुस्तिका गुरुओं की बड़ी भारी भीड़ हो गई है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

कोई सद्‌गुरु का प्यारा मिल जाए तो चारों पुरुषार्थ का द्वार खुल जाए। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वारों का क्या मजाल है कि वे बंद रहें? जब कोई सद्‌गुरु का प्यारा आपका हाथ पकड़ ले तो निश्चित जानिएगा कि आपके लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वार बंद नहीं रह सकते। सत्‌शिष्य का सान्निध्य इतना लाभ पहुँचा सकता है और जब यह सत्‌शिष्य सद्‌गुरु बन जाता है तब उसमें अनंत फल देने की सामर्थ्य उद्‌भुत हो जाती है। ज्ञानेश्वर महाराज सत्‌शिष्य में से सद्‌गुरु बने थे। कबीर साहब सत्‌शिष्य में से सद्‌गुरु हो गए थे। इसी प्रकार नानकदेव तथा विवेकानंद सत्‌शिष्य में से सद्‌गुरु हुए थे।

सत्‌शिष्यों की पावन कथाएँ अपने हृदय को जितना पावन करती हैं, हमें जितना पुण्य प्रदान करती हैं इतना पुण्य तो गंगास्नान से भी नहीं मिलता। सद्‌गुरुओं और सत्‌शिष्यों की चर्चा हमें जितना अमृत पिला सकती है इतना अमृत पिलाने की शक्ति स्वर्ग के घड़े में कहाँ है? स्वर्ग का सुख और स्वर्ग का अमृत ऐसा कहाँ है? सत्‌शिष्यों और सद्‌गुरुओं की गाथाएँ सुनने से, समझने से जो रस मिलता है, अमृत बरसता है वह स्वर्ग के अमृत को लज्जित कर देता है। स्वर्ग का अमृत यहाँ आकर निरर्थक सिद्ध होता है। देवताओं के अमृत को तुच्छ सिद्ध करने की सामर्थ्य सद्‌गुरु और सत्‌शिष्य की गाथाओं में समाई हुई है।

जिनका हृदय सद्‌गुरु के श्रीचरणों में द्रवित हो चुका है, जिनके हृदय में सद्‌गुरु प्रविष्ट हो गए हैं वे लोग सद्‌भागी हैं। वे उस प्राप्ति में पागल हैं।

पागल अर्थात् -

जिन्होंने 'गल' को पा लिया, इस अटकल को पा लिया है कि मस्ती कैसी ली जाती है, जिन्होंने इस बात को समझ लिया है कि अमृत कैसे लूटा जाता है।